श्रमण-जीवन में गुणस्थान-आरोहण

श्री धर्मचन्द जैन

श्रमण प्रायः प्रमत्तसंयत एवं अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में आता-जाता रहता है, किन्तु जब वह क्षपकश्रेणि करता है तो अन्तर्मुहूर्त में दसवें एवं बारहवें गुणस्थान होकर केवलज्ञानी बन जाता है तथा यदि उपशमश्रेणि करता है तो वह दसवें से ग्यारहवें गुणस्थान में रुककर लौट आता है। श्रमण के गुणस्थानारोहण का प्रामाणिक एवं सारगर्भित विवेचन प्रस्तुत आलेख में द्रष्टव्य है। **-सम्पादक**

श्रमण जीवन-

श्रमण के अनेक अर्थ हैं। उनमें से एक तो यह कि तप और संयम में जो अपनी पूरी शक्ति लगा रहा है, तपस्वी है, वह श्रमण हैं। दूसरा अर्थ है 'समण' अर्थात् त्रस, स्थावर सब प्रकार के प्राणियों के प्रति जिसके अन्तःकरण में हित की कामना है, वह श्रमण है। तीसरा अर्थ है- 'समन' अर्थात् जो साधक त्रस-स्थावर जीवों पर समभाव रखने वाला होता है, उसके मन में आकुलता-व्याकुलता और विषम भाव नहीं होते, वही श्रमण कहलाने का अधिकारी है, उसको 'समन' भी कहते हैं।

साधना करने वाले साधकों को तीन रूपों में रखा जा सकता है- 1. चेतनाशील और स्वस्थ, 2. चेतनाशील किन्तु अस्वस्थ और 3. चेतनाशून्य। प्रथम चेतनाशील साधक वे हैं जो बिना किसी पर की प्रेरणा के कर्त्तव्य-साधन में सदा जागृत रहते हैं। संयम-जीवन में जरा सी भी स्खलना आये तो तुरन्त संभल जाते हैं। कषायों एवं विषयों को जीतने में सदैव सावधान रहते हैं।

दूसरे दर्जे के साधक चेतनाशील होकर भी अस्वस्थ होते हैं। आहार-विहार व आचार-विचार में शुद्धि के कामी होते हुए भी वे प्रमादवश चक्कर खा जाते हैं। विविध प्रलोभनों में लुब्ध और क्षुब्ध हो जाते हैं। उन्हें उस समय किसी योग्य गुरु द्वारा प्रेरणा की आवश्यकता रहती है। वे शारीरिक, मानसिक कष्टों में घबरा जाते हैं। यदि कोई प्रबुद्ध उस समय उन्हें नहीं संभाले तो वे साधना मार्ग से च्युत हो जाते हैं।

तीसरे चेतना शून्य साधक वे हैं जो व्रत-नियम की अपेक्षा छोड़कर केवल वेष का वहन करते हैं। छिपे कुकर्माचरण करने पर भी जब कोई कहते हैं- महाराज! संयम नहीं पलता तो वेष क्यों नहीं छोड़ देते? तब कहते हैं, गुरु का दिया बाना भला कैसे छोड़ सकता हूँ। इस प्रकार आध्यात्मिक साधना को छोड़कर आरंभ-परिग्रह का सेवन करने वाले चेतना शून्य साधक हैं। वे मुनिव्रत लेकर भी संसार के मोह-माया जाल में सब कुछ भूल जाते हैं। उनकी साधना में गति नहीं रहने से वे कल्याण मार्ग में सहायक नहीं हो सकते।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रमण-जीवन का प्रारंभ चारित्र से होता है। जब कोई साधक समस्त सावद्य योगों का जीवन भर के लिये तीन करण-तीन योग से त्याग करने हेतु प्रतिज्ञा स्वीकार करता है तब श्रमण जीवन प्रारम्भ होता है। गुरु भगवन्तों के मुखारविन्द से जिस समय वह अपूर्व उत्साह एवं दृढ़ता के साथ संयम-जीवन की प्रतिज्ञा स्वीकार करता है, उस समय उसके भावों में अप्रमत्तता रहने से उसे अप्रमत्त संयत गुणस्थान का अधिकारी माना जाता है। जो साधक संयम अंगीकार करने के बाद भी अपने भावों को विशुद्ध बनाये रखने हेतु स्वाध्याय-ध्यान, जप-तप, सेवा आदि में संलग्न रहता है तो बीच-बीच में अप्रमत्तता आती रहती है। श्रमण-जीवन का महल चारित्र पर टिका रहता है। जितना चारित्र निर्मल एवं उत्कृष्ट होता है, उतना ही साधक का संयम भी विशुद्ध बना रहता है। चारित्र के मुख्यतः पाँच भेद होते हैं- 1. सामायिक चारित्र, 2. छेदोपस्थापनीय चारित्र, 3. परिहार विशुद्धि चारित्र, 4 सूक्ष्म सम्पराय चारित्र और 5. यथाख्यात चारित्र।

चयरित्तिकरं चारित्तं होइ आहियं। (उत्तराध्ययन 28.33) अर्थात् संचित कर्मों से आत्मा को रिक्त करना, तप-संयम के द्वारा पूर्व बद्ध कर्मों को दूर हटाना तथा नये कर्मों के बन्धन को रोकना, इस क्रिया का नाम चारित्र है। चारित्र सम्यक् तभी बनता है जबकि वह सम्यक् ज्ञान व सम्यक् दर्शन पूर्वक हो। चारित्र के उक्त पाँच भेदों का विवेचन इस प्रकार है-

1. सामायिक चारित्र- विषय-कषाय और आरम्भ-परिग्रहादि सावद्य योगों का, विषम भावों का त्याग करना तथा ज्ञान, दर्शन, चारित्रमय रत्नत्रय रूप समभाव को धारण करना, इसका नाम सामायिक चारित्र है ।

दूसरे शब्दों में सर्व-सावद्य योगों का त्रिकरण-त्रियोग से जीवन भर के लिए त्याग कर देना तथा ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना में संलग्न रहना 'सामायिक चारित्र' कहलाता है।

सामायिक चारित्र के दो भेद होते हैं- 1 इत्वरिक और 2. यावत्कथिक।

(1) **इत्वरिक सामायिक चारित्र-** यह थोड़े काल के लिए होता है। इसकी स्थिति जघन्य सात दिन, मध्यम चार माह और उत्कृष्ट छह महीने की है। यह चारित्र भरत और ऐरवत क्षेत्र में प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर के शासनाश्रित साधु-साध्वियों में ही होता है। महाव्रतों में आरोपण के पूर्व जो चारित्र होता है, उसे इत्वरकालिक सामायिक चारित्र कहते हैं। इसे वर्तमान में छोटी दीक्षा भी कहा जाता है।

(2) यावत्कथिक सामायिक चारित्र- इसके होने पर संसार का त्याग करते समय सर्व-सावद्य त्याग रूप सामायिक चारित्र जीवन भर रहता है, पुनः महाव्रतारोपण की आवश्यकता नहीं होती। यह चारित्र महाविदेह क्षेत्र के सभी साधु-साध्वियों में तथा भरत-ऐरावत में मध्य के 22 तीर्थंकरों के शासन काल के साधु-साध्वियों में पाया जाता है।

सामायिक चारित्र ग्रहण करते समय सातवाँ अप्रमत्त गुणस्थान आता है, बाद में परिणामों की विशुद्धि में कमी आने पर छठा प्रमत्त संयत गुणस्थान आ जाता है। यदि कोई साधक ऐसे उच्चकोटि के हों जो संयम ग्रहण करके अपने परिणामों को विशुद्ध रखते हैं, हीयमान नहीं होने देते, वे अन्तर्मुहूर्त में ही श्रेणीकरण करके आठवें

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

आदि आगे के गुणस्थानों में भी जा सकते हैं।

यह ज्ञातव्य है कि अप्रमत्त संयत गुणस्थान को जिस साधक ने उस भव में प्रथम बार ही प्राप्त किया है तो वह अन्तर्मुहूर्त उस गुणस्थान में रहता ही है। अर्थात् अन्तर्मुहूर्त बीते बिना न तो वह नीचे गिरता है, न ऊपर के गुणस्थानों में चढ़ता है और न ही मरण को प्राप्त होता है।

किन्तु उस भव में यदि दूसरी-तीसरी बार अप्रमत्त संयत गुणस्थान प्राप्त किया है तो वह एक समय रहकर भी मरण को प्राप्त हो सकता है। यह नियम है कि सातवें गुणस्थान में मरण को प्राप्त होने वाले साधक आराधक होते हैं। वे वैमानिक देवलोकों में ही उत्पन्न होते हैं तथा अधिकतम 15 भव करके मोक्ष में चले जाते हैं।

सामायिक चारित्र एक भव में पृथक्त्व सौ बार तथा अनेक भव में पृथक्त्व हजार बार आ सकता है। सामायिक चारित्र आठ भवों में ही आता है, इससे अधिक भवों में नहीं।

सामायिक चारित्र के इत्वारिक और यावत्कथिक जो भेद किये हैं वे मानव-स्वभावगत विशेषताओं के कारण किये गए हैं। प्रथम तीर्थंकर के साधु सरल और जड़ होते हैं। अन्तिम तीर्थंकर के साधु वक्र और जड़ होते हैं, किन्तु मध्य के 22 तीर्थंकरों के तथा महाविदेह क्षेत्र के साधु-साध्वी सरल और प्राज्ञ होते हैं। यही कारण है कि मध्य के 22 तीर्थंकरों के शासनवर्ती एवं महाविदेही साधु-साध्वियों को पुनः महाव्रतारोपण रूप छेदोपस्थापनीय चारित्र की आवश्यकता ही नहीं होती है, इसलिए उनका सामायिक चारित्र यावत्कथिक अर्थात् जीवन पर्यन्त के लिये होता है।

सामायिक चारित्र में छठे से लेकर नवें तक चार गुणस्थान होते हैं। छठा-सातवाँ गुणस्थान तो उत्कृष्ट आठ भवों से प्राप्त हो सकता है, किन्तु आठवाँ एवं नवाँ गुणस्थान तो तीन भवों से अधिक प्राप्त नहीं होता है। क्योंकि उपशम श्रेणि अधिकतम 2 भवों में हो सकती है, तथा एक भव में क्षपक श्रेणि। आठवाँ एवं उससे ऊपर के गुणस्थान श्रेणि में ही प्राप्त होते हैं। जो जीव आठवें, नवें गुणस्थान में रहते हुए काल करता है तो वह पाँच अनुत्तर विमान का अधिकारी बनता है।

2. छेदोपस्थापनीय चारित्र- जिस चारित्र में पूर्व दीक्षा-पर्याय का छेदकर पाँच महाव्रतों का आरोपण किया जाता है, उसे छेदोपस्थापनीय चारित्र कहते हैं। यह चारित्र मात्र भरत-ऐरवत क्षेत्र में प्रथम एवं अन्तिम तीर्थंकर के शासनवर्ती साधु-साध्वियों में ही पाया जाता है। उसके दो भेद हैं- 1. सातिचार और 2. निरतिचार।

1. पहले व अन्तिम तीर्थंकर के तीर्थ में किसी साधु-साध्वी को मूल गुणों की घात होने के कारण दीक्षा पर्याय का छेद दिया जाए या नई दीक्षा दी जाए, उसे सातिचार छेदोपस्थापनीय चारित्र कहते हैं।
2. इत्वर सामायिक चारित्र वाले शिष्य को जब बड़ी दीक्षा दी जावे तथा एक तीर्थंकर के शासन से दूसरे तीर्थंकर के शासन में आने वाले साधु को जो पाँच महाव्रतों का आरोपण किया जावे, उसे निरतिचार छेदोपस्थापनीय चारित्र कहते हैं।

जैसे पार्श्वनाथ परम्परा के अनेक साधु-साध्वियों ने चातुर्मास धर्म को छोड़कर भगवान महावीर के

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

शासन में पंचयाम धर्म स्वीकार किया।

छेदोपस्थापनीय चारित्र में भी सामायिक चारित्र के समान 6 से 9 गुणस्थान हैं। यह भी आठ भवों में ही प्राप्त होता है। एक भव में जघन्य एक बार तथा उत्कृष्ट बीस पृथक्त्व अर्थात् दो बीसी से लेकर छ बीसी तक प्राप्त होता है। दूसरे शब्दों में 40 से लेकर 120 बार तक उत्कृष्ट एक भव में प्राप्त हो सकता है। आठ भवों में कुल मिलाकर 120 X 8= 960 बार प्राप्त हो सकता है। अर्थात् छेदोपस्थापनीय संयत के अनेक भव (8 भव) में नौ सौ से ऊपर और एक हजार से कम आकर्ष होते हैं।

3. परिहार विशुद्धि चारित्र- जिस चारित्र के द्वारा कर्मों का अथवा दोषों का विशेष रूप से परिहार होकर, निर्जरा द्वारा विशेष शुद्धि हो, उसे परिहार 'विशुद्धि' चारित्र कहते हैं। अर्थात् तप विशेष द्वारा विशेष शुद्धि कराने वाला चारित्र परिहार विशुद्धि चारित्र कहलाता है।

इस चारित्र की आराधना 9 मुनि मिलकर करते हैं। इनमें चार साधु तप करते हैं। ये 'पारिहारिक' कहलाते हैं। चार साधु वैयावृत्त्य करते हैं। ये 'अनुपारिहारिक' कहलाते हैं। शेष एक वाचनाचार्य के रूप में रहते हैं, जिसे सभी साधु वन्दना करते हैं, उनसे प्रत्याख्यान लेते हैं, आलोचना करते हैं और शास्त्र श्रवण करते हैं। इस प्रक्रिया में 18 माह का समय लगता है। प्रथम छः माह में वैयावृत्त्य करने वाले द्वितीय छः माह में तप करते हैं। तप करने वाले वैयावृत्त्य करते हैं। वाचनाचार्य वहीं रहता है। अन्तिम छह माह में वाचनाचार्य तप करता है, सात साधु वैयावृत्त्य करते हैं, एक वाचनाचार्य होता है। इस प्रकार 18 माह में यह तप पूर्ण होता है। इसके पूर्ण होने पर या तो वे सभी मुनिराज पुनः इसी कल्प (तप) को प्रारंभ कर देते हैं। या जिनकल्प धारण कर लेते हैं या फिर पुनः अपने गच्छ में आ जाते हैं।

परिहारविशुद्धि तप की आराधना वे ही साधु कर सकते हैं जिन्हें कम से कम नवें पूर्व की तीसरी आचार वस्तु का ज्ञान हो तथा अधिकतम 10 पूर्वों का ज्ञान हो। जिनकी आयु कम से कम 29 वर्ष की हो तथा बीस वर्ष की दीक्षा पर्याय हो चुकी हो। यह चारित्र तीर्थंकर भगवान के पास अथवा जिन्होंने तीर्थंकर भगवान के पास पर चारित्र अंगीकार किया हो, उनके पास अंगीकार कर सकते हैं, अन्य के पास नहीं।

परिहारविशुद्धि चारित्र में छठा व सातवाँ ये दो गुणस्थान ही होते हैं। इस चारित्र में रहते साधक किसी भी प्रकार की लब्धि का प्रयोग नहीं करते हैं। यह चारित्र एक भव में अधिकतम तीन बार प्राप्त हो सकता है तथा अनेक भवों में अधिकतम सात बार प्राप्त हो सकता है। कुल मिलाकर तीन भवों में ही प्राप्त होता हैं। यह चारित्र पूर्वज्ञान पर आधारित है अतः साध्वियों में नहीं पाया जाता है। यह चारित्र प्रथम व अन्तिम तीर्थंकर के शासन में ही पाया जाता है। अर्थात् महाविदेह क्षेत्र में तथा भरत-ऐरवत में मध्य के 22 तीर्थंकरों के शासन में यह चारित्र नहीं पाया जाता है।

परिहार विशुद्धि संयत का जघन्य काल एक संयत की अपेक्षा एक समय (मरण की अपेक्षा) है तथा उत्कृष्ट काल देशोन उनतीस वर्ष कम पूर्वकोटि वर्ष का है। यद्यपि इस चारित्र का काल 18 माह बताया है, किन्तु

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

उन्हीं अविच्छिन्न परिणामों से जीवन पर्यन्त भी इस चारित्र का पालन किया जा सकता है, इसी अपेक्षा से उत्कृष्ट काल बतलाया गया है।

4. सूक्ष्म सम्पराय चारित्र- जब मोहनीय कर्म की 28 प्रकृतियों में से मात्र संज्वलन लोभ-कषाय का ही उदय रहे, अन्य प्रकृतियों का क्षय अथवा उपशम हो जाये, ऐसी अवस्था को सूक्ष्म सम्पराय चारित्र कहते हैं। यह चारित्र उपशम श्रेणि व क्षपक श्रेणि दोनों ही प्रकार के साधकों को प्राप्त होता है।

इस चारित्र में मात्र दसवाँ गुणस्थान ही होता है। इसकी स्थिति जघन्य एक समय तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की होती है। यह चारित्र एक भव में चार बार तथा अनेक भवों में 9 बार प्राप्त हो सकता है। कुल मिलाकर 3 भवों में ही प्राप्त होता है। इस चारित्र में यह विशेषता है कि संयत में ज्ञानोपयोग ही रहता है। अर्थात् साधक की प्रवृत्ति चार ज्ञानों में ही होती है, दर्शनोपयोग में प्रवृत्ति नहीं रह पाती।

यह चारित्र संक्लेश और विशुद्धि की अपेक्षा भी दो प्रकार का है। उपशम श्रेणी में जब साधक ग्यारहवें गुणस्थान से गिरकर दसवें गुणस्थान को प्राप्त करता है तो उसे संक्लिश्यमान सूक्ष्मसम्पराय चारित्र कहते हैं। जब उपशम अथवा क्षपक श्रेणि करते समय साधक उत्तरोत्तर विशुद्ध परिणामों से आठवें, नवें गुणस्थान से दसवें गुणस्थान को प्राप्त करते हैं तब उसे विशुद्धयमान सूक्ष्मसम्पराय चारित्र कहते हैं।

5. यथाख्यात चारित्र- कषाय रहित साधु का चारित्र, जो किसी भी प्रकार के किंचित् भी दोष से रहित, निर्मल और पूर्ण विशुद्ध होता है, उस सर्वोच्च चारित्र को यथाख्यात चारित्र कहते हैं। अर्थात् वीतरागियों का चारित्र यथाख्यात चारित्र है। इस चारित्र में मोहनीय कर्म का, राग-द्वेषादि का लेश मात्र भी उदय नहीं रहता है। इसके निम्नलिखित भेद हैं-

(अ) उपशान्त मोह छद्मस्थ चारित्र- यह ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती साधकों में होता है।

(ब) क्षीणमोह छद्मस्थ चारित्र- यह बारहवें गुणस्थान वर्ती साधकों में होता है।

(स) सयोगी केवली चारित्र- यह तेरहवें गुणस्थानवर्ती में होता है।

(द) अयोगी केवली चारित्र- यह चौदहवें गुणस्थानवर्ती में होता है।

उपशम श्रेणि करने वाले साधु-साध्वियों को ग्यारहवाँ गुणस्थान प्राप्त होता है। इस गुणस्थान वालों को अन्तर्मुहूर्त में नीचे गिरना ही पड़ता है। यदि आयु पूर्ण हो जाये तो काल भी कर सकते हैं। काल करने पर ये पाँच अनुत्तर विमान में ही जाते हैं। वहाँ 33 सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति पाते हैं तथा अगले मनुष्य भव में मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं।

उपशान्त कषाय वीतराग गुणस्थान एक भव में उत्कृष्ट दो बार तथा अनेक भवों में उत्कृष्ट चार बार प्राप्त हो सकता है। यह गुणस्थान दो भवों से अधिक में प्राप्त नहीं होता है। इस गुणस्थान की यह भी विशेषता है कि इसमें रहते साधक के परिणाम न तो वर्धमान होते हैं, न हीयमान। एकान्त अवस्थित परिणाम मात्र इसी ग्यारहवें गुणस्थान में पाये जाते हैं। इस गुणस्थान की स्थिति पूर्ण हो जाने पर साधक को नीचे गिरना पड़ता है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

दसवें गुणस्थान में आने पर संज्वलन लोभ का उदय हो जाता है, किन्तु ग्यारहवें गुणस्थान में रहते किसी भी कषाय का उदय नहीं रहता।

बारहवाँ, तेरहवाँ, चौदहवाँ गुणस्थान क्षपक श्रेणि करने वाले चरम शरीरी साधकों को ही प्राप्त होता है। ये अप्रतिपाती गुणस्थान हैं। अर्थात् इन्हें प्राप्त करने वाले अर्थात् क्षपक श्रेणि पर आरूढ़ होने वाले संयत नीचे नहीं गिरते हैं। वे उसी भव में मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं।

श्रमण जीवन और आराधना

संयम-जीवन अंगीकार कर जो निरतिचार संयम का पालन करते हैं तथा जाने-अनजाने जो दोष लगे भी हैं तो उनका आलोचना, प्रायश्चित्त आदि द्वारा शोधन कर लेते हैं, ऐसे सजग, सरल एवं समत्व भाव में लीन साधक आराधकता को प्राप्त होते हैं।

जो श्रमण जीवन में छठे-सातवें गुणस्थान में रहते वैमानिक देवलोक का आयुष्य बन्ध कर लेते हैं, वे आराधक होते हैं। चौथे से सातवें गुणस्थान में रहते यदि कोई भी जीव आगामी भव का आयुबन्ध कर लेते हैं तो वे भी आराधक कहलाते हैं। अर्थात् सम्यक्त्व अवस्था, श्रावकपना अथवा साधुपने में रहते जो आगामी भव की आयु बान्ध लेते हैं, वे आराधक बन जाते हैं। ऐसे साधक अधिकतम 15 भव करके मोक्ष चले जाते हैं, 15 भव वैमानिक व मनुष्य के ही करते हैं। शेष 22 दण्डकों के तो हमेशा के लिये ताले लगा देते हैं।

भगवती सूत्र शतक 25 उद्दे. 6 में तो कहा है कि 5 समिति एवं 3 गुप्ति का ज्ञान रखने वाला श्रमण भी संयम में जागरूकता रखते हुए उत्कृष्ट आराधक बन सकता है।

गुणस्थानों पर आरोहण मोह घटने से होता है। जितना-जितना मोह (कषाय-भाव) घटता है उतनी ही परिणामों में विशुद्धि आती है, आसक्ति घटती है, निस्पृहता एवं समत्व भाव में वृद्धि होती है, तभी सम्यक्त्व, श्रावकपना, संयतपना प्राप्त होता है। आराधकता श्रेणिकरण, वीतरागता, सर्वज्ञता एवं मोक्ष-प्राप्ति ये सभी श्रमण जीवन की निर्मल-निरतिचार साधना-आराधना से ही संभव है।

-रजिस्ट्रार, अखिल भारतीय श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड, जोधपुर (राज.)
(ई-45, प्रतापनगर, जोधपुर)

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org